इकाई 4 *कथाएँ* और *चरित*[*]

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 *काव्य* साहित्य

4.2.1 दरबारी संस्कृति के अवयव के रूप में *काव्य*

4.2.2 कालिदास के *काव्य*

4.2.3 राजाओं द्वारा रचित *काव्य*

4.2.4 प्रायद्वीपीय भारत के *काव्य* : संगम युग

4.2.5 प्रायद्वीपीय भारत के *काव्य* : उत्तर-संगम युग

4.3 *चरित* साहित्य

4.3.1 *हर्षचरित*

4.3.2 *बुद्धचरित*

4.3.3 *रामचरित*

4.4 अलंकृत साहित्यिक कृतियों के रूप में *काव्य* और *चरित*

4.5 ऐतिहासिक परिवर्तन के संकेतक के रूप में *काव्यों* और *चरितों* की भाषा में बदलाव

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.9 संदर्भ ग्रंथ

4.10 शैक्षणिक वीडियो

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको निम्नलिखित तथ्यों से परिचित कराना है:

- *काव्य* और *चरित* ग्रंथ क्या हैं जिन्होंने गुप्त युग से शुरू होने वाली विपुल साहित्यिक गतिविधि को निर्दिष्ट किया,
- इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए वे किस प्रकार उपयोगी स्रोत हैं,
- इन साहित्यिक कृतियों में निहित एक ऐतिहासिक परम्परा जिसका तर्कसंगत अनुमान लगाए जाने की आवश्यकता है,
- *काव्य* जो पाठ्य और रचनात्मक साहित्य के उत्पादन में नए उच्च और उत्तम मानकों की स्थापना का कारण बने,
- कुछ महत्वपूर्ण *चरित* रचनाएँ जिनके बारे में आपको जानना चाहिए, तथा
- *काव्यों* और *चरितों* की भाषा में परिवर्तन को एक ऐतिहासिक परिवर्तन के संकेत के रूप में कैसे देखा जा सकता है।

[*] **डॉ. अभिषेक आनंद, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली**

4.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम को पढ़ने के बाद आपको विभिन्न स्रोतों जैसे *दान-स्तुतियों, गाथाओं, आख्यान* परम्परा, महाकाव्यों, *इतिहास-पुराण* परम्परा, बौद्ध और जैन परंपराओं, शिलालेखों, संगम साहित्य, आत्मकथाओं/जीवनियों एवं *भक्ति* साहित्य, पारिवारिक इतिहास (*वंशावलियों*), इत्यादि में ऐतिहासिक जागरूकता की अभिव्यक्ति, प्रस्तुति और प्रतिनिधित्व की व्यापक समझ होगी। ऐतिहासिक चेतना विभिन्न रूपों में स्रोतों की एक विस्तृत और विविध श्रेणी में अंतर्निहित है और इस इकाई में हम *काव्यों* और *चरितों* के बारे में अध्ययन करेंगे जिनके प्रचुर लेखन ने उनकी समकालीन घटनाओं, विकासों और परिवर्तनों पर प्रकाश डाला जो हमें उस इतिहास के पुनर्निर्माण और पुनर्कल्पना में सहायता प्रदान करते हैं। जैसा कि रोमिला थापर (2013: 4) ने दिलचस्प टिप्पणी की है, 'ऐतिहासिक परम्पराएँ अतीत के ज्ञान से निकलती हैं', हम देखेंगे कि कैसे *काव्यों* और *चरितों* में एक अलग ऐतिहासिक परम्परा की शुरुआत की गई एवं कैसे उसे आत्मसात तथा प्रसारित किया गया।

गद्य शैली में *कथा* साहित्य पर **इकाई 2** में चर्चा की गई है। इसलिए इस इकाई में हम *कथा* शैली के तहत *काव्य* साहित्य के बारे में बात करेंगे। इसमें हमारा ध्यान कविताओं और नाटकों, दोनों, पर केंद्रित रहेगा।

4.2 *काव्य* साहित्य

धर्मशास्त्रों को लिखा जा चुका था और पहली सहस्राब्दी सी ई की प्रारंभिक शताब्दियों में उन्हें अंतिम आकार दिया जा रहा था। पाणिनी का *अष्टाध्यायी* (लगभग 500-400 बी सी ई) और पाणिनी के *अष्टाध्यायी* पर पतंजलि की टीका (commentary) – *महाभाष्य* (दूसरी-तीसरी शताब्दी बी सी ई) – जैसे व्याकरण-संबंधी निबंधों ने संस्कृत साहित्य के विकास और फलने-फूलने की नींव रखी। इस काल के दौरान रचनात्मक साहित्य राजाओं और उनके दरबारों के संरक्षण में फला-फूला।

गुप्त काल से *काव्य* परम्परा एक पहचान बन गई। पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-132** की **इकाई 15** में हमने गुप्त काल में साहित्यिक गतिविधि के प्रस्फुटन और प्रचुरता, संस्कृत साहित्य के प्रभावशाली विकास और परिष्करण, और संस्कृत ग्रंथों के उत्कृष्ट लेखन पर चर्चा की। *काव्य* और *चरित* इस समय के दौरान और आने वाले समय में बहुतायत से लिखे गए। गुप्त काल से योग्य और प्रतिष्ठित लेखकों और राज्यों के दरबारी-कवियों ने नाटकों और कविताओं की रचना शुरू की। थापर (2002: 259) इस वृत्तांत का अवलोकन प्रदान करते हुए कहती हैं:

> संस्कृत में कविता और गद्य बड़े पैमाने पर राज-दरबार, कुलीन/अभिजात वर्ग, शहरी अमीरों और ऐसे समाजों से जुड़े साहित्य थे।

इन रचनाओं की नगरीयता को कई इतिहासकारों ने रेखांकित किया है। पूर्वकालिक साहित्य से अलग यह साहित्य लेखकत्व, विषय और शैली में शहरी पृष्ठभूमि पर केंद्रित है। इन ग्रंथों में तक्षशिला, मथुरा, शिशुपालगढ़, महास्थान, नागार्जुनकोंडा, कावेरीपट्टिनम, आदि नगरों के संदर्भ में विशिष्ट नगरीय जीवन स्पष्ट है।

आप इस इकाई में बाद में '*चरित* साहित्य' भाग के तहत अश्वघोष के *बुद्धचरित* के बारे में पढ़ेंगे। उन्होंने *वज्रसूची* नामक एक बौद्ध कविता भी लिखी जिसमें ब्राह्मणों और उनकी सामाजिक व्यवस्था की आलोचना की गई है।

इस युग से संबंधित रचनात्मक साहित्य का बड़ा हिस्सा बाद की अवधि में नाटक-कला, कविता और साहित्यिक सिद्धांत पर शोध और अध्ययन का स्रोत बन गया। कालिदास (आप उनके और उनकी साहित्यिक कृतियों के बारे में इस इकाई में आगे पढ़ेंगे) के प्रभावशाली योगदान के बाद संस्कृत में रचनात्मक साहित्य को शानदार भव्यता मिली:

1) भारवि ने *किरातार्जुनीय* लिखा (इसका कथानक *महाभारत* के एक विषय से लिया गया है: अर्जुन का शिव के साथ संघर्ष),
2) माघ ने कई साहित्यिक कृतियों, जैसे *शिशुपालवध* और *भट्टिकाव्य*, की रचना की,

3) भवभूति ने *मालती-माधव* की रचना की।

काव्यात्मक और गद्य अयथार्थपूर्ण (romantic) कथाएँ अक्सर महाकाव्यों और पौराणिक कथाओं या परिचित आख्यानों के विषय-वस्तुओं पर आधारित होती थीं जो, जैसा कि थापर (2002: 311) कहती हैं, 'दरबारी शैली में लिखी गईं और कई प्रकार के साहित्यिक गुणों से भरपूर' होती थीं। कथात्मक पहलू कई मामलों में भाषाई अलंकरण के अधीन था। सक्षम और प्रतिभाशाली साहित्यिक विद्वानों, जैसा कि थापर (2002: 345) दिलचस्प रूप से बताती हैं, 'जो साहित्यिक कला में लिप्त और प्रशंसित थे', का शाही दरबारों में स्वागत किया जाता था, उन्हें संरक्षण मिलता था और उन्हें नियोजित किया जाता था। परिष्कृत रूप से रचित गीतात्मक काव्य राजसी वर्ग को बहुत आकर्षित करता था।

इनमें से अधिकांश नाटक प्रेम प्रसंग-युक्त हास्य-प्रधान नाटक थे। दुखद कहानियाँ कम थीं, शायद इसलिए कि रंगमंच का उद्देश्य मनोरंजन था। नाटककार शूद्रक, जो शाही वंश से थे, ने प्रसिद्ध *मृच्छकटिका* (चिकनी मिट्टी की छोटी गाड़ी) लिखी थी। इसकी मूल कहानी गरीब ब्राह्मण व्यापारी चारूदत्त और एक सुंदर, सुसंस्कृत, निपुण और संपन्न गणिका वसंतसेना के मध्य प्रेम के बारे में है। इसे प्राचीन भारतीय नाटकों की सर्वश्रेष्ठ प्रस्तुतियों में से एक माना जाता है। यह हमें शहरी तरीकों और जीवन की झलक प्रदान करता है। कवि विशाखदत्त ने *मुद्राराक्षस* नामक अपने नाटक में मौर्यों द्वारा नंदों के शासन के अंत को वर्णित करते हुए अतीत की राजनीतिक घटनाओं पर प्रकाश डाला है। यह चंद्रगुप्त मौर्य के सत्ता में आने का उल्लेख करता है। यह मौर्य काल के कई शताब्दियों बाद लिखा गया। इतिहासकार इस ग्रंथ के आधार पर चंद्रगुप्त मौर्य और कौटिल्य के साथ उसके जुड़ाव के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाए। थापर (2002: 175-76) हमें बताती हैं कि जब चंद्रगुप्त सिंहासन पर बैठा था, 'वह तब एक युवा था और माना जाता है कि वह ब्राह्मण कौटिल्य (जिसे चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है) के आश्रित था जो सिंहासन प्राप्त करने और उसे बनाए रखने, दोनों में, चंद्रगुप्त का मार्गदर्शक और संरक्षक था। यह कहानियों की एक श्रृंखला द्वारा सुझाया गया है, विशेष रूप से बौद्ध और जैन ग्रंथों से, और नाटक *मुद्राराक्षस* द्वारा भी जो चंद्रगुप्त के सत्ता में उदय से संबंधित है'। विशाखदत्त ने *देवीचंद्रगुप्तम* की भी रचना की जो गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के सत्ता में आने की कहानी बताती है। दोनों साहित्यिक रचनाओं में हमें शाही दरबार की कार्यप्रणाली, बारीकियों और पेचीदगियों के दिलचस्प तत्व मिलते हैं लेकिन थापर (2002: 312) टिप्पणी करती हैं कि 'ये काफ़ी भिन्न हैं और बदलते ऐतिहासिक संदर्भों के प्रति उनकी संवेदनशीलता को दर्शाते हैं'।

पंचतंत्र की कहानियाँ एक युवा राजकुमार को दुनिया के तौर-तरीकों से अवगत कराने की दृष्टि से लिखी गई। बाद में, उन्हें विभिन्न संस्करणों में विस्तृत किया गया और अनुवाद के माध्यम से पश्चिम में भी *पंचतंत्र* की कहानियाँ पहुँचीं। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर-पश्चिमी सीमांत और यूनानी भूमि के बीच समुद्री व्यापार के माध्यम से यूनानी-रोमन दुनिया के साथ सांस्कृतिक परस्पर क्रिया और विचारों और कलाकृतियों के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप, जैसा कि थापर (2002: 253) हमें बताती हैं:

> भारतीय लोक-कथाएँ और दंतकथाएँ पश्चिम पहुँचीं और *पंचतंत्र* जैसे संग्रहों का बाद में पड़ोसी भाषाओं में अनुवाद किया गया, जो यूरोपीय साहित्य में विभिन्न रूपों में दिखाई देते हैं जो शायद ईसप/एसोप (Aesop)[1] की दंतकथाओं के कुछ संस्करणों को भी शामिल करते हैं।

सुबंधु का *वासवदत्ता* अपनी साहित्यिक गुणवत्ता के लिए प्रसिद्ध था। बाणभट्ट ने राजा हर्ष की जीवनी के साथ-साथ एक काल्पनिक प्रेम प्रसंग-युक्त उपन्यास भी लिखा जिसका शीर्षक *कादंबरी* है। इस उत्कृष्ट कृति के बारे में थापर (2002: 312) टिप्पणी करती हैं कि इसका 'कथानक इतना जटिल है कि पाठक या श्रोता वास्तविक मूलकथा की संरचना को लगभग खो देता है'। साहित्यिक रूपों में इस तरह की गहन रचनात्मकता की एक विशिष्ट विशेषता है कि ये कविताएँ और नाटक बड़े पैमाने पर मानव व्यवहार को दर्शाते हैं और प्रतिबिंबित करते हैं, भले ही वह समाज का एक निश्चित वर्ग या खंड – राजसी वर्ग – ही क्यों न हों। कुल मिलाकर, इनकी पृष्ठभूमि और संदर्भ शाही दरबार, शाही जीवन शैली, आदि हैं। हालांकि हमारे पास एक अपवाद भी है – *कथासरितसागर* (कहानियों की धाराओं का महासागर) जो 11वीं शताब्दी सी ई में सोमदेव द्वारा लिखी गई थी। यह दरबारी और

---

[1] यूनानी कहानीकार ईसप (लगभग 620-564 बी सी ई) ने कई कहानियाँ लिखीं जिन्हें अब सामूहिक रूप से ईसप की दंतकथाएँ कहा जाता है।

लोक विषयों के मिश्रण पर आधारित गद्य कहानियों का एक संकलन है, जिनमें से कुछ सुदुर देशों की यात्राओं पर भाष्य हैं।

राजशेखर के *कर्पूरमंजरी* और कृष्ण मिश्र के *प्रबोध-चंद्रोदय* जैसे प्रसिद्ध नाटकों में तीखे संवाद के रूप में धार्मिक/सांप्रदायिक प्रतिद्वंद्विता दिखाई देती है। बौद्ध और जैन भिक्षुओं व भक्तों पर व्यंग्य किया जाता है और *कौल* [2] जैसे कुछ तांत्रिक शैव संप्रदायों की निंदा और उनका उपहास किया गया। इस तरह के शैव कर्मकांडों का तिरस्कार किया गया है। यह शाही दरबार के साथ-साथ सामान्य जन के बीच नए उभरते हुए पंथों पर चर्चा करने या कम से कम उन्हें पहचाने की प्रवृत्ति को प्रदर्शित करता है।

4.2.1 दरबारी संस्कृति के अवयव के रूप में *काव्य*

जैसा कि हमने देखा, *काव्य* शैली दरबारी संस्कृति का अभिन्न अंग थी। इसे उपयुक्त रूप से अलंकृत दरबारी कविता कहा जा सकता है। कभी-कभी एक *काव्य* रचना इतनी कुशलता से लिखी जाती थी कि इसे आगे और पीछे, दोनों, तरह से पढ़ा जा सकता था। प्रत्येक पठन में दो अलग-अलग कहानियाँ होती थीं, जैसे कि एक पठन में *रामायण* की कथा और दूसरे में *महाभारत* की होती थी। इन रचनाओं को शाही दरबार की राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त संस्कृत माध्यम में लिखा गया था जिसका उपयोग अब व्यापक रूप से अपनाया गया, उसका अभ्यास किया गया और उसे प्रचारित किया गया और साहित्यिक मंडलियों में प्रोत्साहित किया गया। हालांकि, थापर (2002ः 259) इन संस्कृत नाटकों के लक्षित/आशयित दर्शकों के बीच अंतर की पहचान करते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैंः

> अश्वघोष के नाटकों के अंश मध्य एशिया के तुर्फ़ान (Turfan) में एक दूर के *मठ* में पाए गए। श्रोताओं की रुचि बौद्ध विषयों में उतनी ही रही होगी जितनी कि साहित्य की अपेक्षाकृत इस नई शैली में। एक अधिक कुशल नाटककार भास[3], जिसने प्रसिद्ध *स्वप्नवासवदत्तम* सहित कई नाटक लिखे, ने दरबारी मनोदशा पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया ... भास के नाटकों के विषय महाकाव्यों या प्रेमलीला की ऐतिहासिक घटनाओं से संबंधित थे और दरबारी दर्शकों ने राजाओं के कामुक कारनामों का आनंद लिया। भास ने दरबारी अभिजात वर्ग के सीमित दर्शकों के लिए लिखा जबकि अश्वघोष के नाटकों को धार्मिक सभाओं में व्यापक दर्शकों के लिए प्रदर्शित एवं प्रस्तुत माना जा सकता है।

4.2.2 कालिदास के *काव्य*[4]

महानतम और सबसे असाधारण संस्कृत कवि/नाटककार जिन्होंने संस्कृत साहित्य को जबरदस्त गति दी वह कालिदास थे। उनके योगदान ने संस्कृत भाषा की प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ाया और उनके लिखित रत्नों ने बाद में रचित कई काव्यों के लेखन को प्रभावित किया। वे चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और पाँचवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के थे तथा गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय के दरबार के 'नौ रत्नों' (*नवरत्नों*) में से एक थे। उन्होंने *अभिज्ञान-शाकुंतलम, मालविकाग्निमित्रम, विक्रमोर्वशियम* जैसे नाटक और *रघुवंशम, ऋतुसंहार, कुमारसम्भवम* और *मेघदूतम* जैसी काव्य रचनाएँ लिखीं जो नायाब साहित्यिक मानकों को दर्शाते हैं। ये चमत्कारिक कृतियाँ मौखिक और छंदपूर्ण प्रवीणता में बेजोड़ हैं। कहा जाता है कि वह विद्या की विभिन्न शाखाओं से परिचित थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने संपूर्ण वैदिक कोष, *योग* और *सांख्य* जैसी दार्शनिक प्रणालियों के साथ-साथ चित्रकला और संगीत जैसी ललित कलाओं का ज्ञान भी प्राप्त किया था।

यदि एक ओर शकुंतला की कहानी और शकुंतला के प्रेमी राजा दुष्यंत के साथ उसका अंतिम पुनर्मिलन उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है जो प्राचीन भारतीय साहित्य और मंच-कला की सर्वोच्च उपलब्धि है तो दूसरी

---

[2] *कौलाचार* ('*कौल* व्यवहार') और *कौलामार्ग* (*कौल* मार्ग, पथ या प्रथा) के रूप में भी जाना जाता है। यह पहली सहस्राब्दी सी ई के दौरान तांत्रिक शैववाद और शक्तिवाद के तहत एक परम्परा थी। यह शिव एवं शक्ति की पूजा से जुड़े अपने विशिष्ट अनुष्ठानों और प्रतीकात्मकता द्वारा जानी जाती थी।

[3] वास्तव में हम उनके द्वारा लिखे गए 13 नाटकों के बारे में जानते हैं। वह एक महत्वपूर्ण कवि थे, जो प्रारंभिक गुप्त काल में अस्तित्व में थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में लिखा था लेकिन हम उनके नाटकों में प्राकृत का पर्याप्त उपयोग भी पाते हैं। उन्होंने *द्रदीराचारूदत्त* की रचना की थी। इस नाटक को *मृच्छकटिका* का अग्रदूत कहा जाता है। यह *द्रदीराचारूदत* था जिसे *मृच्छकटिका* के रूप में अपनाया और नया रूप दिया गया था। *यवनिका* शब्द का प्रयोग उन्होंने पर्दे के लिए किया है। यह यूनानियों के साथ संपर्क को इंगित करता है। यह माना जाता है कि भास कालिदास के पूर्ववर्ती थे।

[4] यह भाग हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी-132** की डॉ. अभिषेक आनंद द्वारा लिखित **इकाई 15** से ग्रहित है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ओर उनके *मेघदूतम* को संस्कृत में लिखी गई अब तक की सबसे उत्कृष्ट कविता के रूप में माना जाता है। यह एक दीर्घ गीतात्मक कविता है जो भौतिक परिदृश्य और प्राकृतिक छटा को मानवीय भावनाओं के साथ जोड़ती है।

अभिज्ञान-शाकुंतलम को विश्व भर में सर्वश्रेष्ठ 100 साहित्यिक रचनाओं में से एक माना जाता है। यह यूरोपीय भाषाओं में अनुवादित होने वाली शुरुआती भारतीय साहित्यिक कृतियों में से एक थी तथा *भगवद्गीता* दूसरी थी। समय के साथ इसका अनुवाद विश्व की सभी महत्वपूर्ण भाषाओं में किया जाने लगा। थापर (2002: 311) के अनुसार, इसे 'साहित्यिक आलोचकों द्वारा संस्कृत नाटक में एक मिसाल के रूप में माना जाता था। इसकी संस्कृत साहित्यिक सिद्धांत में व्यापक रूप से चर्चा की गई थी और बाद में संपूर्ण यूरोप में। इसके फलस्वरूप जर्मन रूमानवाद/स्वच्छंदतावाद (romanticism) पर इसके प्रभाव को देखा गया'।

मेघदूतम की रचना 100 से अधिक छंदों में गीतात्मक रूप से की गई थी। इस साहित्यिक चमत्कार में निर्वासित यक्ष अपने प्रेम, दाम्पत्य भक्ति और अपनी प्यारी पत्नी से अलग होने की पीड़ा को व्यक्त करता है। यह मानवीय भावनाओं और अनोखे अलंकारों से सुशोभित है। कालिदास द्वारा प्रयुक्त उपमाएँ पाठकों/श्रोताओं को उनकी कल्पना, विविधता और उपयुक्तता के आधार पर आकर्षित करती हैं। भावनाओं और जोश को चित्रित करने में यह बेजोड़ है। *रघुवंशम* में उन्होंने राम की चौतरफ़ा जीत का गुणगान किया है और कहा जाता है कि वे अप्रत्यक्ष रूप से कुछ गुप्त शासकों और उनकी उपलब्धियों की ओर इशारा करते हैं। *कुमारसंभवम* शिव और पार्वती के प्रेमालाप और उनके पुत्र कार्तिकेय/स्कंद/मुरुगन के जन्म के बारे में एक कहानी है। *ऋतुसंहार* में छह ऋतुओं का वर्णन मिलता है और यह साहित्यिक कृति श्रृंगार (सजावट और अलंकरण) के तत्वों से भरी है। *मालविकाग्निमित्रम,* अन्य बातों के अलावा, नाट्य की पूरी परिभाषा तथा एक कुशल नर्तक की विशेषताओं का उल्लेख करता है।

बाएँ: कालिदास का चित्रण

श्रेयः नेहल दवे एन.डी.

स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/Category: K%C4%81lid%C4%81sa#/media/File:Kalidas.jpg

दाएँ: ऋषि दुर्वासा ने शकुंतला को उसके प्रेमी दुष्यंत के बारे में कल्पना में खो जाने के कारण शाप दियाः *अभिज्ञान शाकुंतलम* का एक प्रकरण, लगभग 1895

श्रेयः कोर बागान (Chore Bagan) आर्ट स्टूडियो

स्रोतः विकिमिडिया कॉमन्स; Wikimedia Commons; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Durvasa_ Shakuntala.jpg

4.2.3 राजाओं द्वारा *काव्य*

यह जानना दिलचस्प है कि एक सक्षम राजा और प्रशासक होने के अलावा हर्ष को तीन नाटकों (*प्रियदर्शिका, रत्नावली* और *नागानंद*) के लेखक होने का श्रेय दिया जाता है। इनमें से दो शास्त्रीय संस्कृत में परिहास-युक्त रचनाएँ हैं जबकि तीसरे में बौद्ध विचार से प्रभावित एक चिंतनशील विषय शामिल है।

लेकिन इतिहासकारों के बीच इस बात को लेकर अनिश्चितता है कि वह वास्तविक रचयिता हैं या केवल नाम के लिए उन्हें लेखकत्व दिया गया है। उनके दरबारी कवि बाणभट्ट ने उनके असाधारण काव्य-कौशल के लिए उनकी प्रशंसा की और कुछ बाद के भी शाही इतिहासकारों ने उन्हें एक साहित्यिक दिग्गज के रूप में माना और उनकी प्रशंसा की। हालांकि कई मध्ययुगीन विद्वानों ने उपरोक्त ग्रंथों के उनके लेखक होने पर संदेह किया। यह तर्क दिया जाता है कि उन्होंने कुछ अंशों का योगदान दिया होगा लेकिन जैसा कि एक लोकप्रिय कहावत है, आर. एस. शर्मा (2018 [2015]: 263) टिप्पणी करते हैं, '... शाही लेखक केवल आधे लेखक होते हैं'। कोई भी आसानी से समझ सकता है और अनुमान लगा सकता है कि एक शासक की छवि को निखारने के उद्देश्य से उसकी जीत और विजय अभियानों के अलावा कई अन्य उपलब्धियों, जिनमें बौद्धिक सोच और व्यवहार-कुशलता, लिखने की क्षमता और साहित्यिक उपलब्धियों जैसे विद्वतापूर्ण लेखन, का बखान प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में किया जाता था। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के समय में हरिषेण[5] द्वारा शुरू की गई संरक्षक-राजा की स्तुति करने की यह प्रथा हर्ष के समय तक फैली हुई प्रतीत होती है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह अच्छी तरह से स्थापित और सामान्य हो गई थी। यह तार्किक रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके पीछे का उद्‌देश्य संरक्षक-राजा के पक्ष को जीतने के साथ-साथ उसके साथियों, प्रतिद्वंद्वियों और राज्य की प्रजा के बीच उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाना था। न केवल लेखन की कला और योग्यता बल्कि विशिष्ट लेखकत्व सम्राटों के साथ जुड़ गया और हर्ष के साथ भी ऐसा ही रहा होगा। हमारे पास बौद्धिक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले राजकुमारों और राजाओं के संदर्भ हैं और जब साहित्यिक रचनाएँ 'उच्च संस्कृति' के रूप में मानी जाने लगीं तो यह स्वाभाविक ही था कि शासन करने वाले राजाओं को महत्वपूर्ण लेखन के लिए श्रेय दिया जाने लगा जो पहले की प्रवृत्ति नहीं थी। यह संस्कृत सीखने का एक संकेतक बन गया और विशेष रूप से दरबारी संस्कृति से जुड़ गया। संस्कृत भाषा में कौशल और प्रवीणता के एक गुणी प्रदर्शन के रूप में जागरूक साहित्यिक लेखन प्रचलन में आया। हमें शाही मंडलियों, मंदिरों और *मठों* से जुड़ी संस्थाओं में संस्कृत पढ़ाए जाने के संदर्भ मिलते हैं। लेकिन राजकुमारों के पास विशेष निजी शिक्षक थे।

हमें महेंद्रवर्मन प्रथम (600-630 सी ई) के बारे में भी पता चलता है जो उत्तर-पल्लव राज्य से संबंधित थे और कन्नौज (वर्तमान उत्तर प्रदेश में) के पुष्यभूति सम्राट हर्ष और चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय के समकालीन थे। हम पल्लव साम्राज्य के बढ़ते राजनीतिक नियंत्रण, ताकत और प्रभुत्व का श्रेय उन्हीं को देते हैं। वे प्रारंभिक तमिल सांस्कृतिक विकास के प्रबल प्रशंसक, पारखी और संरक्षक भी थे। कहा जाता है कि वे एक कवि और नाटककार भी थे और इसमें कुछ ख्याति प्राप्त करने में वे सफल भी रहे। उन्होंने एक हास्य-नाटक, जिसका शीर्षक *मत्तविलास प्रहसन* है, लिखा।

4.2.4 प्रायद्वीपीय भारत के *काव्य*: संगम युग

संगम साहित्य सबसे प्रारंभिक साहित्यिक स्रोत है जो *तमिलहम/तमिलकम* (शुरूआती तमिल भाषी दक्षिण भारत) पर विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। यह इन प्राचीन समाजों में लोकप्रिय विषयों पर लघु और दीर्घ काव्यों का संग्रह है। उदाहरण के लिए, कई कविताएँ धावा बोलने और लूट के बारे में बताती हैं। कुछ दुल्हनों के अपहरण और कब्ज़ा करने के बारे में बताते हैं। ये सभी वीर साहित्य के लिए सामान्य विषय हैं। वे योद्धाओं और लड़ाइयों के एक वीर युग को उजागर करते हैं। उनमें से कई योद्धाओं, प्रमुखों या राजाओं के नाम, उनके सैन्य कारनामों, विजय अभियानों और अन्य उपलब्धियों का विस्तार से वर्णन करते हैं। कई दानप्राप्तकर्ताओं

[5] *प्रयाग–प्रशस्ति* अभिलेख में, जिसके बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

द्वारा दानदाताओं के रिश्तेदारों, योद्धाओं, कवियों और अन्य योग्य लाभार्थियों को उपहार और दान देने की प्रशंसा की गई है।

किंवदंती है कि राजाओं और प्रमुखों के संरक्षण में तीन सम्मेलन (*संगम*) आयोजित किए गए थे। तृतीय और आखिरी *संगम* मदुरै में हुआ था जहाँ तमिल कवि इकट्ठे हुए और उनकी रचनाओं को संगम काव्य संग्रह में शामिल किया गया था जो तीन से चार शताब्दियों की अवधि में संकलित हुआ। इसका यथार्थ तिथि-निर्धारण समस्याओं से मुक्त नहीं है जो एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसके महत्व, दायरे और उपयोगिता को जटिल बनाता है। आमतौर पर इसका कालखण्ड सामान्य युग की पहली चार शताब्दियों का माना जाता है। हालांकि शर्मा (2018 [2015]: 23) पुष्टि करते हैं कि इसका अंतिम संकलन छठी शताब्दी तक चला। इस संग्रह में आठ संकलनों में व्यवस्थित कविताओं की लगभग 30,000 पंक्तियाँ शामिल हैं। संगम ग्रंथों में कई परतें हैं लेकिन वर्तमान में इन्हें विषय और शैली के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है। हालांकि सामाजिक विकास के चरणों के आधार पर उनका पता लगाया जा सकता है। इनमें मुख्य रूप से *एट्टुतोगइ/ एट्टुतोकई* (अष्ट संग्रह) के नाम से जाना जाने वाला प्रारंभिक स्तर और कुछ हद तक बाद का *पत्तुपट्टू* (*Pattupattu*; दशगीत) कहा जाता है।

महर्षि (महान् ऋषि) अगस्तयार, परंपरागत रूप से माना जाता है कि उन्होंने प्रथम तमिल संगम की अध्यक्षता की थी

बारहवीं शताब्दी की प्रस्तर प्रतिमा, लखी सराय, बिहार से प्राप्त और लॉस एंजिल्स काउंटी म्यूज़ियम ऑफ़ आर्ट, अमरीका में संरक्षित

साभार: विकिपीडिया लव्स आर्ट पार्टिसिपेंट 'टीम-ए'

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wikiFile:WLA_lacma_12th_century_Maharishi_Agastya.jpg

इन कविताओं का विशेष रूप से उल्लेखनीय पहलू परिस्थितिक जागरूकता और पर्यावरणीय चिंताओं और धारणाओं के साथ मानवीय गतिविधियों का सहसंबंध है। यह पाँच पर्यावरणीय क्षेत्रों (भौगोलिक क्षेत्रों की अपनी विशिष्ट विशेषताओं जैसे जलवायु, मिट्टी की स्थिति, सामाजिक समूहों और निर्वाह-प्रतिरूपों) को सूचीबद्ध करता है जिन्हें *ऐनतिणई* (*Aintinai*) अर्थात पाँच *तिणै* /*तिनै* (क्षेत्र) कहा जाता है:

क) *कुरिंजी* (जंगल और पर्वतीय क्षेत्र): यहाँ शिकारी और वे लोग, जो झूम-कृषि (slash-and-burn cultivation) में संलग्न थे, रहते थे।

ख) *मुल्लई* (निचली पहाड़ियों और पतले जंगलों वाले पशुचारण क्षेत्र): पशुपालकों और स्थानांतरित खेती में संलग्न लोगों के आवास।

ग) *मरूतम* (आर्द्रभूमि, उपजाऊ कृषि मैदान): इसकी आर्थिक गतिविधि कृषि तथा उससे संबंधित कार्यकलाप थे। यहाँ हल का उपयोग करने वाले कृषकों, मुख्यतः चावल की खेती करने वाले किसानों का निवास था।

घ) *नेयतल* (समुद्री तट): मछुआरों, नमक बनाने वालों और मोती-गोताखोरों का निवास।

ड़) *पालई* (शुष्क भूमि): यह क्षेत्र लुटेरों के लिए बदनाम था जो आखेट और डकैती में संलग्न थे।

इन पारिस्थितिक क्षेत्रों को स्पष्ट रूप से सीमांकित और अलग नहीं किया जा सकता था।

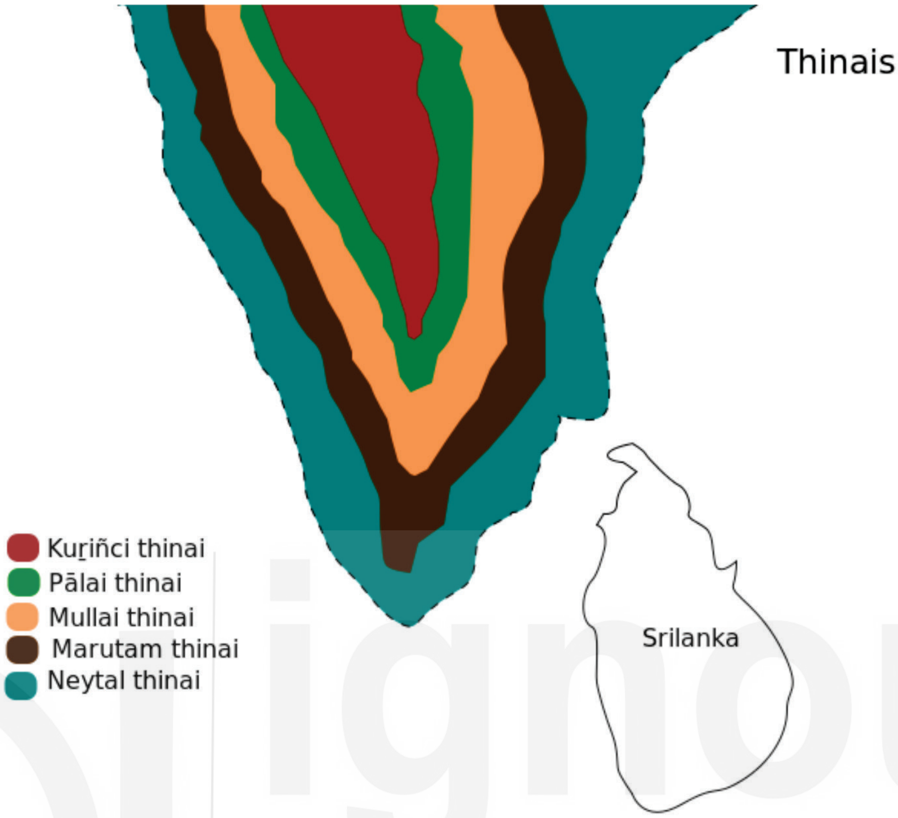

श्रेय: प्रवीणपी

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Thinai_en.svg

संगम साहित्य धार्मिक साहित्य नहीं है। संगम कवियों ने विभिन्न नायकों और नायिकाओं की प्रशंसा करते हुए इन कविताओं की रचना की। इस प्रकार यह धर्मनिरपेक्ष साहित्य की श्रेणी में आता है और आदिम गीति-काव्य होने के बावजूद जब वे बाद में लिखे गए तो उनमें उच्च साहित्यिक गुणवत्ता और योग्यता के तत्व शामिल थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कविताओं का पाठ राजदरबार में किया जाता था। वे कुछ चेर शासकों का उल्लेख करते हैं जो पहली और दूसरी शताब्दी सी ई के शिलालेखों में दान-कर्ताओं के रूप में भी दिखाई देते हैं। उन्होंने कावेरीपट्टिनम जैसी कई नगरीय-बस्तियों का भी उल्लेख किया है जिनका समृद्ध अस्तित्व पुरातात्विक रूप से प्रमाणित है। वे यवनों के अपने जहाजों में आने, सोने के बदले काली मिर्च खरीदने और मूल निवासियों को महिला दासों और मदिरा की आपूर्ति करने की भी बात करते हैं। इस व्यापार की जानकारी न केवल लैटिन और यूनानी लेखन से मिलती है बल्कि पुरातात्विक खोजों से भी इसकी पुष्टि होती है। इस प्रकार, समस्याग्रस्त तिथि-निर्धारण के बावजूद संगम काव्य संकलन पहली सहस्राब्दी सी ई की प्रारंभिक शताब्दियों में तमिलनाडु के नदी के डेल्टाई क्षेत्र (deltaic) के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिदृश्य पर ऐतिहासिक जानकारी का एक प्रमुख स्रोत है। इससे व्यापार और वाणिज्य पर जो जानकारी मिलती है उसकी पुष्टि विदेशी लेखन और पुरातात्विक अभिलेखों से होती है।

आप **इकाई 7** में संगम साहित्य में ऐतिहासिक चेतना के बारे में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.2.5 प्रायद्वीपीय भारत के *काव्यः* उत्तर-संगम युग

संगम के बाद के युग में भी हमें प्रायद्वीपीय भारत में क्षेत्रीय राज्यों के काव्य मुख्यतः दो भाषाओं में मिलते हैं: क) तमिल; ख) कन्नड़।

प्रारंभिक और मध्य-शताब्दी सी ई में तमिल में गीत और महाकाव्य दोनों प्रकार की काव्यात्मक रचनाओं की शुरुआत हुई। पहले के समय की उपदेशात्मक कविताओं, जैसे कि *कुरल/कुराल* (*Kural*) और *नालडियार* (*Naladiyar*), जो अक्सर जैन प्रेरणा व परम्परा पर आधारित होते थे, का पाठ किया जाता

था। *शिलप्पादिकारम/शिलप्पदिकारम* और *मणिमेकलई/मणिमेखलै* नामक दो विस्तृत तमिल महाकाव्यों ने पहली सहस्राब्दी सी ई के मध्य में तमिल में एक स्वतंत्र एवं परिपक्व काव्य शैली की शुरुआत की। *शिलप्पादिकारम/शिलप्पदिकारम* के रचयिता इलंगो आदिगल/अडिगल शाही परिवार के सदस्य थे और यह स्पष्ट है कि वह जैन *श्रमणों* के प्रति पक्षपाती थे क्योंकि कुछ धार्मिक उदारवाद के बावजूद यह रचना *कर्म* (मानव क्रिया) और *अहिंसा* पर ज़ोर देने वाली भावना और स्वभाव से प्रभावित है।

मरीना सागरतट, चेन्नई में *शिलप्पदिकारम* के लेखक इलंगो आदिगल की मूर्ति
साभारः रोकेश-5-**सुथर**
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki File: Ilango_ Adigal _ statue _ at_Marina_Beach_closeup.jpg

एक व्यापारी परिवार से आने वाले चितलाई चतनार (Chithalai Chathanar) ने *शिलप्पदिकारम* की उत्तर-कृति की रचना की जो आगे की कहानी बतलाती है। ये काव्य रचनाएँ पिछली कविताओं और तलवार चलाने वाले नायकों के बारे में दंकथाओं से भिन्न थीं। *शिलप्पदिकारम* की नायिका कन्नकी/कन्नगी है। कहानी के अनुसार रानी की पायल चोरी करने के लिए कन्नगी के पति कोवलन पर अनुचित आरोप और बाद में बिना किसी मुकदमे के राजा के आदेश पर उसका सिर कलम करने पर मदुरै शहर पर एक अभिशाप आया। एक पवित्र और वफ़ादार पत्नी के रूप में वह अंततः देवी पट्टिनी के रूप में पूजनीय हो गई।

शिलप्पदिकारम और *मणिमेकलई* को महाकाव्यों के रूप में माना और वर्गीकृत किया गया है। लेकिन उनके विषय महाकाव्य रूढ़ियों से भिन्न हैं। इनमें ग्रामीण इलाकों के साथ-साथ कावेरीपट्टिनम शहर की समृद्ध छवियाँ हैं। दोनों दैनिक जीवन की गतिविधियों या दैनिक हलचल को भी रेखांकित करते हैं। शहर का विशद् और सुरम्य वर्णन *मणिमेकलई* से मिलता है। शास्त्रीय तमिल कविता शैली का प्रदर्शन करते ये *काव्य* अलंकारों को समाहित करते हैं। इस तरह की लेखन-शैली की मिसाल पहले के संगम संकलनों में देखी जा सकती है। इसी तरह कन्नड़ काव्य साहित्य का एक महत्वपूर्ण योगदान 9वीं शताब्दी सी ई का प्रसिद्ध *कविराजमार्ग* है।

तमिल कविता के विकास को एक धार्मिक आंदोलन (भक्ति) द्वारा आगे बढ़ाया गया था जिसे शिक्षकों/प्रचारकों, भजनशास्त्रियों और कवियों के समूहों और समुदायों द्वारा लोकप्रिय बनाया गया था जिन्हें प्रायः तमिल भक्ति संप्रदायों के 'संत' के रूप में जाना जाता है। उन्होंने अपने गीतों और

रचनाओं में तमिल का व्यापक रूप से उपयोग किया। अन्य दक्षिणी भाषाओं की तुलना में उन्होंने इसके विकास को आगे बढ़ाया। अपने देवता के प्रति पूर्ण *भक्ति* ने उनकी मुख्य धार्मिक अभिव्यक्ति को आकार दिया। उन्हें करिश्माई व्यक्तित्व के रूप में देखा और सम्मानित किया गया था जो *भक्ति* के सिद्धांतों का निर्देश देने और समर्पण कविताओं की रचना करने में सक्षम थे। उनके आसपास बड़ी संख्या में अनुयायी और भक्त एकत्र होते थे।

इन ग्रंथों में नगरीय परिदृश्य को काफ़ी हद तक रेखांकित किया गया है। *शिलप्पदिकारम* और *मणिमेकलई*, दोनों, शहर की केंद्रीयता और शहरी जीवन के विवरण पर ध्यान केंद्रित करते हैं। जैसा कि पहले बताया गया है, कावेरीपट्टिनम, जिसे पुहार/पुम्पुहार के नाम से भी जाना जाता है, का उल्लेख इसके बंदरगाह, व्यापारियों के आवासों और शहर के उस विशेष हिस्से के साथ, जहाँ ***यवन*** रहते थे, किया गया है। हमें ग्रामीण क्षेत्रों से नावों से पुहार पहुँचने वाले धान के संदर्भ मिलते हैं। यहाँ मदुरै, काँचीपुरम और उरैयूर जैसे अन्तर्देशीय बाज़ार-केंद्रों के लिए अन्य व्यापारिक वस्तुओं के बदले इसका आदान-प्रदान किया जाता था। पुहार को समृद्ध जीवन-शैली वाले जीवंत शहर के रूप में दर्शाया गया है। यहाँ का वाणिज्यिक उत्पादन अन्य स्थानों से संसाधनों के व्यापार से जुड़ा थाः

क) पालघाट से फीरोज़ा,

ख) दक्षिण से मोती,

ग) अंतर्देशीय जंगलों से आबनूस, सागौन और चंदन जैसी लकड़ियाँ।

बोध प्रश्न-1

1) *काव्य* साहित्य से आप क्या समझते हैं? इस तरह के लेखन में ऐतिहासिक चेतना कैसे अंतर्निहित और परिलक्षित होती है?

....

....

....

2) कालिदास और उनकी साहित्यिक कृतियों के बारे में आप क्या जानते हैं?

....

....

....

4.3 *चरित* साहित्य

सह-अस्तित्व में *प्रशस्ति* पुरालेखों (जिनके बारे में आप अगली इकाई में विस्तार से अध्ययन करेंगे) के साथ-साथ हम राजाओं के संरक्षण में दरबारी कवियों या लेखकों द्वारा रचित *चरित* ग्रंथ (राजाओं की आत्मकथाएँ या स्तुतियाँ) भी पाते हैं। हालांकि उनके उद्देश्य को समझने के लिए कुछ विवेचन की आवश्यकता है। अक्सर ये ग्रंथ एक विशिष्ट मुद्दे के बारे में कहानी बताने पर ध्यान केंद्रित करते हैं जो सत्ता हासिल करने से संबंधित होती है। इस तरह की कहानी को एक कथा में बुना जाता है और *चरित* पाठ में विस्तारित किया जाता हैः

क) बाणभट्ट द्वारा लिखित *हर्षचरित* में राजा हर्ष के सिंहासन पर बैठने का वर्णन है जिसके कारण सिंहासन हड़पने और ज्येष्ठाधिकार की पवित्रता को चुनौती दी गई (हर्ष उनके पिता राजा प्रभाकरवर्धन के छोटे पुत्र थे)।

ख) *विक्रमांकदेवचरित* (कल्याण के चालुक्य शासक विक्रमादित्य-VI [11वीं शताब्दी के अंत से लेकर 12वीं शताब्दी की शुरूआत तक] की जीवनी) बिल्हण द्वारा लिखा गया है जिसमें वह स्पष्ट करते हैं कि सम्राट को स्वयं भगवान शिव ने अपने बड़े भाई से उसकी राजगद्दी छीनने और उसकी जगह लेने का निर्देश और मार्गदर्शन क्यों दिया था।

ग) संध्याकर-नंदिन द्वारा रचित *रामचरित* में पाल राजा रामपाल के कैवर्तों के विद्रोह को कुचलने और अपनी शक्ति को सफलतापूर्वक पुनः स्थापित करने का विवरण मिलता है।

कुछ *चरितों* और अभिलेखों में राजा को विष्णु या शिव के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया गया है या स्वयं भगवान द्वारा निर्देशित किए जाने का उल्लेख है। इसे सही मायनों में राजशाही को वैध बनाने का एक और तरीका माना जा सकता है। हम इस तरह के इतिवृत्तों में शिलालेखों के *प्रशस्ति* प्रारूप के विस्तारित संस्करण देखते हैं। लेकिन वे शासकों के अधिक विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करते हैं और राजाओं, राजवंशों और क्षेत्रों को अभिगम्य तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। अतः उन्हें *वंशावलियों* के नाम से जाना जाने वाले ऐतिहासिक स्रोतों की एक अन्य श्रेणी से संबंधित कहा जा सकता है क्योंकि उनका ध्यान किसी राजा, राजवंश या क्षेत्र का इतिहास और ऐतिहासिक विवरण पर केंद्रित होता है। कल्हण द्वारा रचित कश्मीर का इतिहास – *राजतरंगिणी* – इस संबंध में असाधारण और अद्वितीय है क्योंकि उन्होंने विभिन्न स्रोतों से अतीत की ऐतिहासिक घटनाओं पर विश्वसनीय साक्ष्य को देखा। इस प्रकार कोई इस बात से इंकार नहीं कर सकता है कि उनका इतिहास ऐतिहासिक लेखन का एक असाधारण उत्कृष्ट नमूना है क्योंकि इसमें वास्तविक ऐतिहासिक घटनाओं और उनके विवरणों के संदर्भ शामिल हैं जिन्हें ऐतिहासिक रूप से व्यावहारिक समझा जा सकता है। बिना किसी संदेह के यह एक असाधारण साहित्यिक कृति है (यही कारण है कि यह इस पाठ्यक्रम की एक अलग, अनुवर्ती **इकाई 6** की विषय-वस्तु है), यद्यपि कल्हण के इतिहास की असाधारण समझ के कारण यह कृति संस्कृत गंथ-लेखन की *वंशावली* शैली में निहित है। यह वास्तविक अर्थ में भारतीय उपमहाद्वीप में लिखा गया प्रथम 'इतिहास' भी है।

याद रखने योग्य एक और दिलचस्प बात यह है कि 12वीं-13वीं शताब्दी में गुजरात के कुछ व्यापारियों पर भी *चरित* लिखे गए थे। दक्षिण भारत से एक जीवन-संबंधी ग्रंथ मिलता है, हालांकि और भी बहुत से *चरित* लिखे गए होंगे लेकिन वे लुप्त हो गए हैं। 11वीं शताब्दी में अतुल नामक कवि द्वारा लिखित *मुशिकावंश* उत्तरी केरल में शासन करने वाले मुशिक/मुशिका वंश की उपलब्धियों को बताता है।

4.3.1 *हर्षचरित*

हर्षचरित (हर्ष का जीवन) सबसे महान् पुष्यभूति राजा हर्षवर्धन की जीवनी है जो एक जीवंत गद्य कथा के रूप में है। इसके रचयिता बाणभट्ट हैं। इसे एक शासक की पहली औपचारिक जीवनी माना जाता है। यह संस्कृत गद्य में जीवनी-लेखन का एक आद्यरूप था। इसने लेखन की एक शैली शुरू की जिसे *चरित* साहित्य के रूप में जाना जाता है जो साथ ही साथ *प्रशस्ति* भी थी। बाद के काल में शाही दरबारों में *चरित* (ऐतिहासिक जीवनियाँ) आम और प्रचलित बन गए।

प्रशस्ति शैली से जुड़े हुए भी चरित साहित्य कुछ प्रमुख घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमते हैं। एक शासक के शासनकाल की घटनाओं में जो महत्वपूर्ण माना जाता था उसके बारे में समकालीन धारणाएँ *चरित* ग्रंथों द्वारा प्रदान की जाती थीं। इस प्रकार उन्हें ऐतिहासिक लेखन के आधुनिक मानकों से आंके जाने के बजाय उस समय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से देखा और समझा जाना चाहिए। संक्षेप में जैसा कि पहले कहा गया है, इस मामले में *चरित* लिखने का एक तात्कालिक कारण निश्चित रूप से छोटे भाई जो बड़े भाई का प्रतिद्वंद्वी था, द्वारा सिंहासन पर कब्ज़ा करने को वैद्य ठहराना था – एक ऐसा कार्य जिसने उत्तराधिकार के नियम को उलट दिया।

कश्मीर से विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए प्रतिभाशाली और निपुण लेखक बिल्हण ने संरक्षण, रोजगार, धन और प्रोत्साहन की तलाश की। उन्हें बाद के चालुक्यों के दरबार में एक पद की पेशकश की गई जहाँ उन्होंने *विक्रमांकदेवचरित* की रचना की। यह भी एक राजा का अपने बड़े भाई के सिंहासन पर कब्ज़ा करने का एक स्पष्टीकरण था। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि ऐतिहासिक वैधता प्राप्त करने का विचार दूर-दूर तक फैला हुआ था। इसका अनुमान छोटे राजवंशों पर लिखे वृत्तांतों (*वंशावली*) से लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, मालाबार (वर्तमान उत्तरी केरल) के एक अल्पज्ञात राजवंश पर अतुल का 11वीं शताब्दी का *मुशकावंश काव्य* जिसका हमने पहले उल्लेख किया है। इस तरह की *वंशावलियों* की शैली, विषय और संरचना दिलचस्प रूप से समान थी, चाहे वे हिमालय के चंबा राज्य में लिखी गई हों या मालाबार (केरल) में। हमें जो याद रखना चाहिए वह यह है कि वे हमारे लिए राजसी, वंशवादी या क्षेत्रीय इतिहास के रूप में ये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

यहाँ तक कि इन ग्रंथों में मिथक भी कभी-कभी लगभग एक जैसे ही होते हैं। इतिवृत्त एक वंश या राजा की कतिपय शुरुआत का पता लगाता है, फिर यह संस्थापक पूर्वजों का उल्लेख करने की दिशा

में आगे बढ़ता है और फिर अधिक प्रामाणिक वंशावली इतिहास की ओर बढ़ता है। कहानी में महत्वपूर्ण/निर्णायक बिंदु एक राज्य की स्थापना को दर्शाते हैं जिसमें स्पष्ट परिवर्तन होते हैं, जैसे और अधिक क्षेत्र खेती के तहत लाए गए, एक राजधानी की स्थापना के साथ शाही मंदिर का निर्माण जो शाही शक्ति का प्रतीक था, उसमें राजा के इष्ट की मूर्ति की स्थापना, राज्य की राजधानी को विभिन्न मार्गों से अन्य स्थानों से जोड़ना, एक प्रशासनिक और नौकरशाही तंत्र, स्थायी सेना की स्थापना एवं उपस्थिति और शिलालेखों[6] को आधिकारिक संस्करणों और शाही निर्णयों और गतिविधियों की घोषणा के रूप में जारी करना। इसके बाद महत्वपूर्ण घटनाओं को इतिवृत्त में प्रलेखित किया जाता है।

4.3.2 *बुद्धचरित*

अश्वघोष[7] ने बुद्ध के जीवन पर *बुद्धचरित* नामक एक विस्तृत काव्य की रचना की। यह ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ और कहा जाता है कि ऐतिहासिक जीवनियों के उदय में इसका बहुत महत्व है। रूद्रदामन का जूनागढ़ शिलालेख, जिसके बारे में आप अगली इकाई में कुछ विस्तार से पढ़ेंगे, *प्रशस्ति* का एक प्रारंभिक उदाहरण हैः एक शैली जो न केवल संस्कृत के उपयोग में बल्कि एक पारंपरिक क्षत्रिय सम्राट का वर्णन करने के मानदंडों के अनुपालन में भी शाही जीवनियों को परिभाषित करती थी। दरबारी संस्कृति के हिस्से के रूप में रचित बाद की शाही जीवनियों के लिए इस तरह के स्तुतिपूर्ण पुरालेख भी निर्णायक और महत्वपूर्ण थे।

एक आदर्श राजा के खाके के रूप में *प्रशस्ति* उन क्षेत्रों में राजशाही की अच्छी तरह से स्थापना को दर्शाती है जहाँ राजशाही इतनी परिचित नहीं थी। एक पाठ्य-प्रारूप के रूप में यह विकसित हो रही थी। *प्रशस्ति* अभिलेखों में संरक्षक-राजाओं की प्रशंसा करना स्पष्ट था। इस साहित्यिक योजना को बुद्धचरित में और भी अधिक देखा जा सकता है। शाही शक्ति को मान्य और प्रमाणित करने के साधन के रूप में *प्रशस्ति* मुखियाओं और राज्यपालों को भी आदर्श *क्षत्रिय* शासकों के रूप में चित्रित कर सकती है, चाहे उनकी उत्पत्ति कुछ भी हो। राजाओं, राज्यपालों और प्रमुखों की देवताओं से तुलना शुरू हो गई थी लेकिन अत्यधिक रूप से नहीं। विडंबना यह है कि *दैवपुत्र* की कुषाण उपाधि के अलावा जब शासक की शक्ति इतनी अधिक नहीं थी तब भी देवत्व के साथ उसका जुड़ाव अधिक मुखर हो गया। मध्य एशियाई मूल के राजवंशों ने वैष्णव, बौद्ध या जैन जैसी स्थानीय पहचानों और विचारधाराओं को अपनाया और यह दिलचस्प है कि किसने क्या चुना (अगली इकाई में आप हेलियोडोरस स्तंभ अभिलेख के बारे में पढ़ेंगे जिसमें वासुदेव पंथ या भागवत धर्म में सबसे पहले दर्ज किए गए यूनानी धर्मान्तरित लोगों का उल्लेख है)।

अश्वघोष संस्कृत के प्रयोग में निपुण थे। यह न केवल, परिधीय क्षेत्रों को छोड़कर अन्य सभी क्षेत्रों में बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों की भाषा के रूप में विकसित हुई बल्कि अब यह बौद्ध धर्म पर विचार करने के लिए एक पसंदीदा भाषा भी बन गई। हालाँकि स्थानीय भाषाओं या स्थानीय प्राकृत भाषाओं को पूरी तरह से नहीं छोड़ा गया था। लेकिन लोकप्रिय संस्कृति से उच्च संस्कृति, यानी अभिजात वर्ग और औपचारिक रूप से शिक्षितों की संस्कृति को रेखांकित करने और उसे लोकप्रिय संस्कृति से अलग करने की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट हो गई।

4.3.3 *रामचरित*

हमने पहले इसके बारे में सरसरी तौर पर उल्लेख किया था। इस खंड में हम संध्याकर-नंदिन के इस *चरित* पाठ पर कुछ प्रकाश डालने जा रहे हैं जो बाद के पाल शासक रामपाल की जीवनी है। जीवनी-ग्रंथ में बताया गया है कि कैसे उन्होंने अपने सामंतों और अधीनस्थ शासक शक्तियों के साथ चतुराई और कूटनीतिक तरीके से कैवर्त विद्रोह, जिसका उद्देश्य पाल विस्तार को रोकना था, के खतरे का सामना करते हुए उसे दबा दिया। परंपरागत रूप से कैवर्त किसानों और मछुआरों की एक 'निम्न' जाति थी। परन्तु इस राजनीतिक घटना के बारे में फिर से बताना उन छोटे-मोटे ज़मींदारों के विद्रोह को रेखांकित करता प्रतीत होता है जिन्होंने शायद कैवर्त किसानों को संगठित किया हो। यह रामपाल द्वारा सामंतों और वन-प्रमुखों को उनके समर्थन और गठबंधन को सुनिश्चित करने के लिए भव्य उपहार

---

[6] आप एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में अभिलेखों के बारे में अगली इकाई में अध्ययन करेंगे।

[7] ऐसा माना जाता है कि अश्वघोष जैसे कुछ महान् रचनात्मक लेखकों को कुषाणों का संरक्षण प्राप्त था। *बुद्धचरित* के अतिरिक्त उन्होंने *सौन्दरानंद* की रचना की जो संस्कृत काव्य का उत्कृष्ट नमूना है।

देने की प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से वर्णन करता है। इस ऐतिहासिक घटना पर प्रकाश डालने से राजा और उसके अधीनस्थों के बीच संबंधों और उनकी सूक्ष्मताओं के बारे में हमें जानकारी का खज़ाना मिलता है।

4.4 अलंकृत साहित्यिक कृतियों के रूप में *काव्य* और *चरित*

अब तक आप जान गए होंगे कि छठी और सातवीं शताब्दी भारतीय साहित्य के इतिहास का एक महत्वपूर्ण चरण था। संस्कृत का प्रयोग शासक वर्ग या उनके दरबारी लेखकों द्वारा दूसरी शताब्दी सी ई से किया जाने लगा था। शाही वंश के लोगों के वैभव, धूमधाम/सजधज और महात्वाकांक्षा को उजागर करने के लिए और उसी के साथ तालमेल बिठाते हुए संस्कृत कविता और गद्य की शैली अलंकृत हो गई। शायद कालिदास के लेखन से बहुत अधिक प्रभावित होने से संस्कृत कविता और गद्य में अब रूपकों, क्रिया विशेषणों, अलंकारों और कल्पना के अन्य रचनात्मक रूपों का उपयोग करना सामान्य हो गया। लेखन इनसे परिपूर्ण हो गया। *हर्षचरित* इसका एक विशिष्ट उदाहरण है। बाणभट्ट द्वारा अलंकृत शैली में यह एक उत्कृष्ट रचना, जो बाद के लेखकों और अनुकरणकर्ताओं के लिए एक मानक बन गई, उनके संरक्षक हर्ष के प्रारंभिक वर्षों की एक *प्रशस्ति* है।

शर्मा (2018 [2005]: 293) हमें बतलाते हैं:

> कविता में नई अलंकृत, शब्द बहुल, उच्च-प्रवाह शैली की आवश्यकता को पूरा करने के लिए कई छंदों का आविष्कार किया गया और उन्हें विस्तृत किया गया ... इस साहित्य ने बौद्धिक जीवन में सत्तावादी प्रवृत्ति को बहुत मजबूत किया तथा राज्य और *वर्ण*-आधारित पितृसत्तात्मक समाज को संरक्षित करने और इसे नई स्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया।

4.5 एक ऐतिहासिक परिवर्तन के संकेतक के रूप में *काव्यों* और *चरितों* की भाषा में बदलाव

हमने पहले राजशेखर की *कर्पूरमंजरी* का संदर्भ दिया था जिसे प्राकृत में लिखा गया है। अगली इकाई में आप अभिलेखों की भाषा में बदलाव को एक ऐतिहासिक बदलाव के रूप में पढ़ेंगे। यहाँ, जीवनी और *काव्य* रचनाओं की भाषा में परिवर्तन को स्पष्ट करना प्रासंगिक है।

अब आप जानते हैं कि सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों से ही संस्कृत बौद्धिक और अभिजात वर्ग के संभाषण की भाषा बन गई। इस काल के संस्कृत नाटकों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उच्च और निम्न वर्ग के लोगों को एक ही भाषा बोलने के रूप में नहीं दिखाया जाता था। इन नाटकों में ऊँची हैसियत वाले संस्कृत बोलते हैं जबकि निम्न या अस्पष्ट सामाजिक स्थिति वाले लोग, जैसे शूद्र और सभी महिलाएँ, प्राकृत बोलते हैं। इस प्रकार सामाजिक स्थिति और लिंग निर्धारित किया गया और उसे भाषा के साथ जोड़ा गया।

हालाँकि अपने अधिक लोकप्रिय रूपों में संस्कृत में स्थानीय प्राकृत के तत्व शामिल थे। प्राकृत में लेखन की पुरानी परम्परा में लिखी गई प्रमुख पाठ्य रचनाओं में शमिल हैं:

क) हाल द्वारा रचित *गाथासप्तशती*: ये ज़्यादातर प्रेम और उससे मिलने वाले आनंद के विषय पर छोटी कविताएँ हैं जो अविवाहित या विवाहित महिलाओं द्वारा सरल एवं स्पष्टतवादी एकालापों के रूप में हैं। उनमें से कुछ स्वभाव और स्वर में अत्यधिक भावुक हैं, कुछ कामुक हैं और अन्य आनंददायक रूप से हास्यपूर्ण हैं।

ख) प्रवरसेन का *सेतुबंध*: इसे *रावणवाहो* भी कहा जाता है। यह भगवान राम द्वारा लंका की घेराबंदी का वर्णन करता है।

ग) वाक्पति का *गौड़वाहो /गौडवहो /गउडवहो*: यह कन्नौज के राजा यशोवर्मन की जीवनी है।

घ) राजशेखर[8] द्वारा *कर्पूरमंजरी*: कहा जाता है कि यह एक काल्पनिक कथा है जो उन्होंने अपनी पत्नी अवंतिसुंदरी को खुश करने के लिए लिखी थी जो परिष्कृत रुचि रखने वाली एक प्रतिभाशाली महिला थी।

[8] राजशेखर वही लेखक हैं जिन्होंने 9वीं-10वीं शताब्दी सी ई में *काव्यमीमांसा* की रचना की थी। यह ग्रंथ एक अच्छी कविता की विशेषताओं का चित्रण और व्याख्या करता है और इस क्षमता में यह अनिवार्य रूप से कवियों के लिए एक उपयोगी मार्गदर्शक है।

रचनात्मक साहित्य के लेखन में स्थानीय प्राकृतों, जैसे सौरसेनी प्राकृत जिसमें *गाथासप्तशती* की रचना की गई थी, का प्रयोग कम हो रहा था। किन्तु फिर भी उन्होंने अपभ्रंश (शाब्दिक अर्थ 'गिरना') के उदय को बढ़ावा दिया, शुरूआत में पश्चिमी भारत में जहाँ इसकी उत्पत्ति हुई, फिर अन्य क्षेत्रों (ज़्यादातर परिधीय क्षेत्र) में और अंततः इसने कुछ क्षेत्रीय भाषाओं के उदय में सहायता की। जैसे-जैसे अपभ्रंश के वक्ता अधिक केंद्रीय स्थानों की ओर बढ़ने लगे वैसे-वैसे यह इन स्थानों पर भी प्रचारित होने लगी। क्षेत्रीय भाषाओं का निरंतर प्रयोग तब दिखाई देता है और स्पष्ट होता है जब शिलालेख संस्कृत के साथ इनका भी उपयोग करते हैं या जब संस्कृत में इन क्षेत्रीय भाषाओं के पहचाने जाने वाले योग्य तत्व शामिल होते हैं। यह कुछ हद तक द्विभाषावाद को इंगित करता है। हम अनुमान लगा सकते हैं कि प्रवासी *ब्राह्मणों* के लिए द्विभाषी होना अधिक उपयोगी तथा प्रभावी होता, विशेषकर प्रायद्वीपीय क्षेत्र में। यह भी हो सकता है कि दरबारी साहित्य की मंडलियाँ अंतर-क्षेत्रीय होने के कारण मुख्य रूप से संस्कृत का उपयोग कर रही थीं लेकिन स्थानीय प्राकृत के अवयवों और अंशों के बिना नहीं। स्थान के अनुसार भाषाओं की बहुलता को पहचानने की प्रक्रिया से संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाओं के बीच और भी विविधीकरण को स्वीकार किया गया और आंशिक रूप से प्रमुख संस्कृत भाषा के हिस्से के रूप में माना गया होगा। निस्संदेह, संस्कृत प्रमुख भाषा थी लेकिन इसने शाही दरबार और अन्य स्थानों पर स्थानीय भाषा शैली और वाक्पटुता को वर्जित नहीं किया। क्षेत्रीय भाषाओं का उदय रातोंरात नहीं हुआ। ये कई सामाजिक समूहों और समुदायों द्वारा उपयोग की जाने वाली मूल भाषाएँ थीं। जब इन भाषाओं को बोलने वालों की स्थिति में वृद्धि हुई तो उनकी भाषा की स्थिति भी उन्नत हुई। साहित्य और कला में कई रचनात्मक अभिव्यक्तियों से धीर-धीरे पहचान बनाई गई। नई भाषाएँ अक्सर नए विचारों को व्यक्त करती थीं।

प्राकृत संस्कृत की तुलना में लोकप्रिय भाषण से अधिक निकटता से जुड़ी होने के कारण दरबारी वर्ग के बाहर भी प्रोत्साहित और प्रचारित की गई। विमलसूरी ने *पौमचरियम*[9] की रचना की। यह भगवान राम की कहानी का जैन संस्करण है। यह ग्रंथ न केवल वाल्मीकि के विचारों से भिन्न विचारों को प्रस्तुत करने के लिए उल्लेखनीय है बल्कि यह *रामायण* महाकाव्य के लोकप्रिय साहित्य के रूप में उसके प्रयोजन को दोहराने और बढ़ाने के लिए भी स्मरणीय है जो लोगों को आकर्षित करता है। जैन साहित्य का एक दिलचस्प पहलू जैन दृष्टिकोण से भगवान राम की कहानी के प्रसंगों को बताना था (विस्तृत अध्ययन के लिए **इकाई 3** देखें)। जैन विद्वानों के ग्रंथ अक्सर वाल्मीकि की *रामायण* के स्थापित संस्करणों से कम या अधिक हद तक भिन्न होते हैं।

यह दिलचस्प है कि पहली सहस्राब्दी सी ई और दूसरी सहस्राब्दी सी ई की प्रारंभिक शताब्दियों के दौरान विधर्मी संप्रदाय बौद्ध धर्म और जैन धर्म के लेखकों ने भी संस्कृत में लिखना शुरू कर दिया था जिनमें से कुछ *चरित* शैली से संबंधित थे। संस्कृत को बड़े पैमाने पर इसे पढ़ाया जाने लगा और बौद्ध और जैन दोनों शिक्षा केंद्रों में भी इसे पढ़ाया और प्रयोग किया जाता था। जैन विद्वान भद्रबाहु द्वितीय ने *चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ* और टीकाएँ लिखीं जो जैनियों के पवित्र ग्रंथों पर भाष्य थे और हम जानते हैं कि संस्कृत रचनाएँ *आदिपुराण* और *यशतिलक* जैन धार्मिक साहित्यिक परम्परा का हिस्सा थीं। जैन अक्सर धार्मिक ग्रंथों के अलावा शासकों के आख्यानों, इतिहासों और जीवनियों तथा शाही दरबारों के वृत्तांतों की रचना करते थे। विद्वानों और लेखकों ने विभिन्न जैन संप्रदायों की गतिविधियों का अध्ययन किया और उनकी शिक्षाओं ने उनकी रचनाओं को कुछ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया जैसा कि पहले बौद्ध परम्परा में किया गया था। इस प्रकार जैन परम्परा ने ऐतिहासिक लेखन के संबंध में बौद्ध परम्परा का अनुकरण किया तथा जैन परम्परा इस मामले में बौद्ध परम्परा के समानांतर है। 12वीं शताब्दी में हेमचंद्र और 14वीं शताब्दी में मेरूतुंग जैसे बाद के रचयिताओं ने लेखन की इस शैली की परम्परा और विरासत को आगे बढ़ाया। इतिहास के साथ आलोचनात्मक व्याख्या और भाष्य को मिलाकर परिष्कृत विद्वता का एक अच्छा उदाहरण *द्वश्रय-काव्य* है। *परिशिष्टपर्व* और *प्रबंधचिन्तामणि* जैसे जैन ग्रंथ *प्रबंध* शैली (कथात्मक/अर्द्ध-ऐतिहासिक उपाख्यानात्मक वृत्तांत) में लिखे गए थे। जीवनियों[10] और आत्मकथाओं में महावीर के जीवन, उपदेशों और गतिविधियों पर *महावीर चरित* जैसे निबंध शामिल हैं।

---

[9] यह ग्रंथ तीसरी शताब्दी सी ई के आसपास लिखा गया। इसमें *रामायण* के रावण का उल्लेख है और दिलचस्प बात यह है कि उसे चेदियों के मेघवाहन वंश से संबंधित बताया गया है जिसका प्रसिद्ध शासक खारवेल था।

[10] इनके बारे में आप इकाई 9 में अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न-2

1) *चरित* लेखन का वर्णन एक *चरित* रचना के संदर्भ में कीजिए। आपकी राय में इन पाठ्य रचनाओं को ऐतिहासिक ग्रंथ कैसे माना जा सकता है?

....

....

....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

क) .... ने .... से संपत्ति और रोज़गार की तलाश में विभिन्न स्थानों की यात्रा की जब तक कि उन्हें .... के दरबार में पद नहीं मिला जहाँ उन्होंने .... लिखा।

ख) *रामचरित* में पाल राजा रामपाल द्वारा .... के विद्रोह को कुचलने का वर्णन मिलता है। इसके रचयिता .... हैं।

ग) .... एक शासक की पहली औपचारिक जीवनी थी। यह .... द्वारा लिखा गई थी।

4.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह सीख पाए होंगे कि प्राचीन भारतीय इतिहास में लेखन की प्रत्येक श्रेणी का अतीत का दस्तावेज़ीकरण और वर्णन करने का अपना तरीका है। हमारे औपनिवेशिक शासकों ने प्राचीन भारतीयों पर इतिहास की अनुपस्थिति या अभाव का आरोप लगाया। उन्होंने भारतीय इतिहास पर खुद ही शोध करने और लिखने का विशाल कार्य यहाँ की भूमि और यहाँ के लोगों के बारे में जानने और शासन करने की इच्छा के साथ किया और दूसरा, उन्होंने ऐसा इसलिए भी किया ताकि वे उनके विचार, 'श्वेत नस्ल का बोझ' (अर्थात उपनिवेशित देशों में सभ्यता लाना 'श्वेत नस्ल' का कर्तव्य है) और उनके दावे, कि भारत एक आदिम/अनगढ़ भूमि थी, को सही ठहरा सकें। हाँ, प्राचीन भारतीयों ने उस तरह से इतिहास नहीं लिखा जैसा आज लिखा जाता है और यह सच है कि कल्हण, जिन्होंने 12वीं शताब्दी की शुरुआत में *राजतरंगिणी* को राजाओं और राजवंशों के ऐतिहासिक आख्यान के रूप में वर्णित किया था, के समय तक भारत में हेरोडोटस या थ्यूसीदाइदीज/थूसाईडाईड्स जैसे इतिहासकार नहीं थे।

लेकिन हमने पर्याप्त रूप से यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि *काव्यों* और *चरितों* के ऐतिहासिक मूल्य, महत्व, दायरे, उपयोगिता और विश्वसनीयता को नज़रअंदाज़ या दरकिनार नहीं किया जा सकता है। वे काफ़ी ऐतिहासिक महत्व के हैं। लेकिन इन स्रोतों में इतिहास 'बना बनाया' उपलब्ध नहीं है बल्कि इसे चुनना/बीनना होता है। इस प्रकार इन्हें 'ग़ैर-ऐतिहासिक' ग्रंथों के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है, जैसा कि हमने इस इकाई में ठोस रूप से देखा है। शर्मा (2018 [2005]: 23) ने बाणभट्ट, कालिदास, भास, शूद्रक, आदि के लेखन के बारे में सटीक अवलोकन किया है और अनुमान लगाया है:

> साहित्यिक मूल्य के अलावा वे उस समय की परिस्थितियों को भी प्रतिबिंबित करते हैं जिससे लेखक संबंधित थे .... महान् रचनात्मक रचनाएँ होने के अलावा वे हमें सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की झलकियाँ प्रदान करती हैं ...।

हमने देखा कि *चरित* अनिवार्य रूप से ऐतिहासिक विषयों पर आधारित थे क्योंकि उनका कथानक एक वास्तविक (काल्पनिक नहीं) ऐतिहासिक व्यक्ति या व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द घूमता था। विशेष रूप से *हर्षचरित* के बारे में शर्मा (2018 [2005]: 26) बताते हैं:

> यद्यपि यह रचना अतिश्योक्तिपूर्ण[11] है किन्तु हर्ष के दरबारी जीवन और उसके युग के सामाजिक और धार्मिक जीवन का यह उत्कृष्ट विवरण देती है।

4.7 शब्दावली

धर्मशास्त्र — नैतिक और सामाजिक मानदंडों और आचार-संहिता पर प्राचीन भारतीय संग्रह जो एक हिंदू द्वारा उनके पालन और अनुसरण के लिए लिखे गए।

[11] इसमें कोई संदेह नहीं है कि *चरित* ग्रंथों का उद्देश्य संरक्षक की सराहना और गुणगान करना था।

मानव धर्मशास्त्र (सामान्य बोलचाल में यह *मनुस्मृति* के नाम से जाना जाता है) उनमें से एक है। पी. वी. काणे ने अपनी पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्राज़* (आठ भागों में पाँच खंड) में इन पर व्यापक शोध किया है

हेरोडोटस इन्हें इतिहास का जनक कहा जाता है। ये प्राचीन काल में एक यूनानी इतिहासकार थे। उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप की एक चित्ताकर्षक और काल्पनिक छवि को चित्रित किया था जिसके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने सिकंदर को यहाँ आक्रमण करने के लिए लुभाया था

यवन शर्मा (2018 [2005]: 200) हमें बताते हैं कि यह शब्द शुरू में यूनानियों को संबोधित करने के लिए था किन्तु समय के साथ इसका प्रयोग विदेशी मूल के सभी लोगों को दर्शाने के लिए किया जाने लगा

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 4.2

2) देखें उप-भाग 4.2.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 4.3

2) क) बिल्हण, कश्मीर, कल्याण के चालुक्यों, *विक्रमांकदेवचरित*; ख) कैवर्तों, संध्याकर नंदिन; ग) *हर्षचरित*, बाणभट्ट

4.9 संदर्भ ग्रंथ

पाठक, वी. एस., (1966) *एंशिएंट हिस्टौरियंस ऑफ़ इंडियाः ए स्टडी इन हिस्टौरिकल बायोग्राफ़ीज़* (बम्बईः एशिया पब्लिशिंग हाउस).

शर्मा, आर. एस., (2018 [2005]) *इंडियाज़ एंशिएंट पास्ट* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

थापर, रोमिला, (2002) *अर्ली इंडियाः फ्रॉम द ओरिजिन्स टू ए डी 1300* (नई दिल्लीः पेंगुइन)

थापर, रोमिला, (2013) 'हिस्टौरिकल बायोग्राफीज़ः द *हर्षचरित* एंड द *रामचरित*' एवं 'बायोग्राफ़ीज़ एज़ हिस्टरीज', *द पास्ट बिफोर असः हिस्टौरिकल ट्रडिशन्स ऑफ़ अर्ली नार्थ इंडिया* (नई दिल्लीः परमानेंट ब्लैक)

4.10 शैक्षणिक वीडियो

इन्नोवेशंस एंड टर्निंग पॉइंट्सः टुवर्डस ए हिस्ट्री ऑफ़ काव्य लिटरेचर (यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो)

https://www.youtube.com/watch?v=ZmNWWihE0JQ

ऐंड्रयू ओलेट (हार्वर्ड यूनिवर्सिटी) – संस्कृत ऐज़ ए मेटालैंग्वज फ़ॉर लिटरेचर इन दंडिन

https://www.youtube.com/watch?v=TVgvrr9QGdA